सोनी रुमछू की चार कविताएँ

(1)

अस्तित्व

जन्म की आशा ही
नहीं की गयी जिसकी
पर जन्मी वह
ईश्वर भेजना चाहते थे जिसे,
आधे दिल से
अपनाई गयी वह
अपने घर-समाज से
ठुकराई हुई
इस संसार में आखिर
आ ही गयी वह।
भाइयों के बीच
पिता का स्नेह तलाशती,
जरूरतों के लिए
अपनों के आगे हाथ फैलाती,
कहीं सहारा न पाकर
खुद ही खुद को
मुकम्मल किया उसने
अपनी राह
उसने खुद बनाई है।
समाज के
सारे मापदंडो को
तहस-नहस करती हुई
अपनी नई चाल चलना,
पितृसत्तात्मक समाज में
आवाज़ बुलंद कर
अपने अस्तित्व की
गवाही देना,
क्या आसान सफ़र रहा होगा यह?
आसान था नहीं
सबसे लड़कर अपने हक,
अपने अस्तित्व की नींव रखना,
अपनी आवाज़ बुलंद करना
जब कोई कहे
'मर्दों के बीच न बकना',
'औरतों की तरह रहो' कहने पर
उनका मुंह बंद करना
उनकी तंज भरी हँसी का जवाब
मुस्काते चेहरों से देना,
आसान था नहीं
सबसे लड़कर खुद को दर्ज करना
और मौत का रास्ता आसान लगने पर भी
जिंदगी का चुनाव करना
आसान नहीं था यह।

(2)

काश !

माना कई भाई-बहन थे
कई ज़िम्मेदारी थी,
खाने-पीने की किल्लत रहती थी
कभी-कभी ही मनपसंद
खाना मिला करता था
पर स्कूल की दहलीज ही
चढ़ने दिया होता मुझे
काश पढ़ने दिया होता मुझे।
काश! पढ़ने दिया होता मुझे,
तो धोती नहीं मैं गंदे बर्तन,
गंदे कपड़े
अनजान व्यक्ति के लिए
पकाती नहीं मैं
स्वादिष्ट भोजन
खुद बासी खाने को,
होती नहीं मैं मजबूर
किसी के घर जाने को
और घुट-घुट कर
बचपन बिताने को।
काश पढ़ने दिया होता मुझे,
तो करती नहीं मैं संघर्ष
काम ढूँढ़ने को,

होती नहीं मैं लाचार
किसी अजनबी से ब्याहने को।
काश पढ़ने दिया होता मुझे,
तो सिखाती मैं भी
अपने बच्चों को
क ख ग,
पढ़ाती उन्हें
आदर्श कहानियाँ,
बनती उनकी
प्राथमिक शिक्षक मैं।
काश पढ़ने दिया होता मुझे,
हर बात पर दूसरों का
सहारा न लेना होता
काश मुझे केवल अक्षर का ही
ज्ञान होता।

(3)

वहाँ नहीं पहुँचना

नहीं पहुँचना वहाँ
जहाँ लाशों की सीढ़ियाँ बनायीं जाती हों,
जहाँ बेईमानी के सहारे
ईमान का गला घोंट दिया जाता हो,
जहाँ गरीबों से छीनकर
अमीरों को सब दे दिया जाता हो,
जहाँ औरों का घर फूँककर
अपनी रोटियाँ सेकी जाती हो,
जहाँ धर्म का पैगाम बस
नफ़रत को बढ़ाना हो,
जहाँ कुर्सी मिलने पर
ईमानदारी खो जाती हो,
और अपने ही लोगों का दर्द
भुला दिया जाता हो।
नहीं पहुँचना वहाँ
जहाँ पहुँचने के लिए
विकास के नाम पर
विनाश की नीति अपनाई जाए,
मात्र कुछ सुविधाओं के लिए
बहुमूल्य पेड़ काटे जाएं,
बिजली के लिए
बस्तियाँ उजाड़ी जाएं,
और पल भर के आराम के लिए
अगली पीढ़ी दाव पर लग जाए।
नहीं पहुँचना वहाँ
जहाँ पढ़ना-लिखना सब व्यर्थ हो जाए,
इंसान का इंसान से
भरोसा ही उठ जाए,
नहीं पहुंचना वहाँ
जहाँ पहुँचकर करुणा खो जाए।

(4)

विवशता

जंग छिड़ी रहती है
मस्तिष्क में हमेशा
जाति, धर्म, लिंग
आधार बन ही जाते हैं और
विचार बदल ही नहीं पाता।
किसी की जाति पूछना
क्या अपने-आप में जातिवाद नहीं?
क्या इंसान की पहचान जाति ही है?
धार्मिक विचारों का अलग होना
क्या लोगों के बीच की दूरी समझी जाए?
कमजोरी का उदाहरण हमेशा स्त्रियाँ ही क्यों बनी?
आपके सामने सब कुछ
खत्म होता दिखे और
आप लिख-लिखकर
कलम तोड़ दो पर
लोगों को यह बस
एक कविता ही लगे।
……..

*(**लेखकीय परिचय :** सोनी रुमछू राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।*
मोबा: 8729941573, ई-मेल : sonyrumchu0872@gmail.com)